!! ओ३म् !!
!! कृण्वन्तो विश्वमार्यम !!
वर्ष २ अंक २७
विक्रम संवत् २०७६ पौष - माघ
जनवरी २०२१

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान में

सप्त दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय वेबीनार सम्पन्न

देश के भिन्न-भिन्न प्रांत - भिन्न-भिन्न देश से सम्मलित हुए समस्त आर्य लेखक

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

जनवरी २०२१

वर्ष–३ अंक–२७,
विक्रम संवत् २०७७
दयानान्दाब्द– १९६
कलि संवत् – ५१२१
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९६३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. सामयिकी (सम्पादकीय)

२. विकासवाद और भाषा विकास...

३. Fourth Duty : Respect to Guests

४. वेदों में आततायी व आतंकवाद को समाप्त...

५. भारतीय स्वतंत्रता सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा

६. हिन्दी, देवनागरी और अनुशासन

७. हमारी पहचान

८. यह उलझन किस विध सुलझाऊँ ? (कविता)

९. मधुरम् मधुरम्, मम संस्कृतम् (कविता)

१०. जिम्मेदार कौन ? (कहानी)

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

सामयिकी

इन्कलाब जिन्दाबाद, अर्थात् क्रान्ति अमर है, बलिदानी वीरों का यह उद्घोष लगता है कि पुनः गूंजने लगा है। देश का किसान वर्ग अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत है। सत्ता के साथ उनकी वार्ता विफल हो चुकी है। लगभग दो महीने बीत चुके हैं, भयंकर सर्दी में खुले आकाश के नीचे ठण्ढ से ठिठुरते हुए किसान लोग सरकार से तीन बिलों की वापसी और न्यूनतम समर्थन मूल्य पर उपज बेचने खरीदने का कानून बनाने की याचना कर रहे हैं। किन्तु सरकार इसके लिए राजी नहीं हो रही। अब किसानों को विवश हो कर करो या मरो की स्थिति का सामना करना है। इस लिए लगता है कि वे अब सरदार भगतसिंह का सपना सच करने का मन बना चुके हैं। आन्दोलन स्थल से आवाज आने लगी है कि –

याचना नहीं अब रण होगा
संग्राम महा भीषण होगा।।

आखिर इस रण का दोषी कौन होगा किसान या सरकार। मुझे दिनकर की एक कविता याद आ गई है –

चुराता न्याय जो रण को बुलाता भी वही है।
युधिष्ठिर स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।

और

छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।।

इस लिए किसानों ने आर पार की लड़ाई लड़ने की ठान ली है। इस भावी संग्राम में किसानों के साथ देश का बेरोजगार युवा, नौकरी गंवा चुके कर्मचारी और सेवानिवृत्त सैनिक भी खड़े दिखाई दे रहे हैं। सेना और पुलिस के बीच से भी असंतोष के स्वर सुनाई पड़ रहे हैं। पूरी तरह अराजकता और गृहयुद्ध की स्थिति बन चुकी है। यदि ऐसा हुआ तो यह देश पतन के रसातल में पहुंच जाएगा।

लोगों ने सरकार पर बहुत गम्भीर आरोप लगाए हैं। सत्तासीन केन्द्र सरकार के लोगों पर व्यभिचार, बलात्कार और हत्याएं करने के आरोप मुख्य हैं। इनकी पार्टी को दंगा कराने, नफरत फैलाने वाली कहते हैं और यह भी कहते हैं कि सरकार में पैंतालीस प्रतिशत अपराधी, गुण्डे, चरित्रहीन लोग शामिल हैं। देश के वर्तमान प्रधानमंत्री पर झूठ बोलने, कारपोरेट का एजेंट होने, सरकारी सौदों में चोरी और चुनावी लाभ के लिए सैनिकों की हत्या करवाने के संगीन आरोप लग रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि अपने अनुचित कार्यों को सही ठहराने के लिए सुरक्षा संस्थाओं और न्यायालयों का दुरुपयोग कर रही है। सांसदों विधायकों की खरीद करके चुनी हुई विपक्ष की सरकारें गिराने और तानाशाही करके न्याय का गला घोंटने वाली है।

सर्वोच्च न्यायालय पर से तो लोगों का विश्वास और भरोसा ही उठ गया है। उसकी सर्वत्र खिल्ली उड़ाई जा रही है। कहते हैं कि –

पासवां ही चोर हो तब कौन रखवाली करे।
उस चमन का हाल क्या हो, जिसका माली ही पामाली करें।
काफिले गुजरें वहां से क्योंकर सलामत वाइज।
हो जहां पर रहनुमा और रहजन एक ही शख्स।।

लोकतंत्र में तन्त्र की रचना लोक को सुरक्षा, न्याय और जीविका प्रदान करने के लिए की जाती है। जैसा कि नीति शास्त्र में राजाओं का धर्म बताते हुए कहा है कि –

कृपण अनाथ वृद्धानां यदश्रुपरिमार्जति।
हर्षं संजनयन् नृणां स राज्ञांधर्म उच्यते।।

– ***महाभारत शांति पर्व***

अर्थात् आश्रयहीन, अनाथ और वृद्धों के आंसू पोंछने और लोगों में हर्ष उत्पन्न करने का जो कार्य है, वही राजाओं का धर्म कहा गया है। परन्तु केन्द्र सरकार और उसकी पार्टी इसके सर्वथा विपरीत जाती हुई दिखाई दे रही है। इस कारण वर्तमान में तन्त्र लोक की जान का बवाल बन चुका है। तन्त्र और गण को अलग कर दिया गया है। तन्त्र गण को प्रताड़ित, पीड़ित और स्वत्वहीन करने में लगा दिया गया है।

ऐसे घटिया कानून बना कर लागू कर रहे हैं जिनके बल पर किसी को भी अकारण ही बन्दी बनाकर अनेक वर्षों तक कारागार में डाल रहे हैं। निरपराध लोगों पर देशद्रोह के मुकदमे ठोक कर उनकी सम्पत्ति छीन रहे हैं। मजदूर, किसानों के मुख का ग्रास छीना जा रहा है। गाली–गलौज और चरित्र हनन किया जा रहा है। अपराधी और गुण्डों को सत्कृत और पुरस्कृत किया जा रहा है। आम जन का सरकार के द्वारा कही गई किसी बात पर भरोसा और विश्वास नहीं रहा। केन्द्र सरकार और उसकी पार्टी का दामन दागदार हो चुका है।

देश की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो चुकी है, रुपए की कीमत अत्यंत घट चुकी है। गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी सीमा से बहुत नीचे बढ़ गई है। ऐसी स्थिति में विप्लव की पूरी सम्भावना है।

सरकार के बारे में आम चर्चा है कि वह नंगी हो कर नाच रही है। उसकी नीयत ठीक नहीं है। नोट बन्दी करके और दो हजार का नोट छाप कर उसने अपने पूंजीपति मित्रों का काला धन सफेद करवाया है, उनके कर्जे माफ करके देश की आर्थिक स्थिति खराब की है। उन्हें देश छोड़कर भागने में सहायता की है। जीएसटी लागू करके छोटे व्यापारियों और उद्यमियों तथा विपक्षी प्रान्तीय सरकारों की कमर तोड़ डाली है। मजदूरों के हित में बने कानूनों को निरस्त करके जीविका छीनने और उन्हें कारपोरेट का गुलाम बनाने में लगी है। बैंकों में लोगों का धन सुरक्षित नहीं है, बैंकों पर से भरोसा उठ गया है। अनहोनी हो जाने की आशंका सताती रहती है। कुल मिलाकर यह सरकार पूरी तरह से जन विरोधी और देश विरोधी कही जा रही है। लगता है कि इस सरकार और उसकी पार्टी में सरकार चलाने की योग्यता नहीं है। आम जन को शिक्षा, चिकित्सा, न्याय और जीविका प्रदान करने का सामर्थ्य नहीं है। हां तरह–तरह के टैक्स लगा कर डीजल, पेट्रोल की कीमतें बेतहाशा बढ़ा कर लोगों को लूटने और कंगाल करने में निपुण है।

ऐसी स्थिति में लोगों के पास अब हथेली पर जान रख कर संघर्ष करने के अलावा और कोई चारा नहीं बचा है। दिनकर जी के शब्दों में कहें तो –

स्वत्व मांगने से न मिले, संघात पाप हो जाएं।
बोलो धर्मराज शोषित ये जिएं या कि मर जाएं।

जन आन्दोलन को दबाने, बदनाम करने, दमन करने की सरकारी कोशिशों की पोल खुल चुकी है। लोग सिर पर कफन बांध कर सीना तान कर सामने आ चुके हैं।

किसानों की रैली सफल रही है। लगभग पांच लाख ट्रैक्टर और साठ लाख किसानों ने इसमें भाग लिया। हिंसा किसानों ने नहीं, पुलिस ने की है, लाल किले पर झण्डा फहराने वाले लोग सरकार समर्थक थे, किसान नहीं। सरकार से न्याय की आशा नहीं है। किसानों को मेरा संदेश है कि –

अपने ही विमुख पराए बन
आंखों के सन्मुख आएंगे।
पग–पग पर घोर निराशा के
काले बादल छा जाएंगे।
तब अपनी प्रथम विफलता में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे
जब महाकाल की माला में।
मां मांग रही होगी आहुति
जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में।
पल भर भी पड़ असमंजस में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।।

देखना है कि सरकार समय के रथ का घरघर नाद सुनकर सचेत होती है कि नहीं। ऐसा न हो कि जनता को कहना पड़े कि –

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठचं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः।।

– मनुस्मृति

ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है।।

विकासवाद और भाषा विकास : तर्क और तथ्य की कसौटी

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में विकासवाद और आस्तिकवाद पर चर्चा की थी। विकासवाद और आस्तिकवाद पर चर्चाएं अब कम होती हैं। लेकिन ये दोनों विषय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। महत्वपूर्ण इस लिए हैं कि विज्ञान के क्षेत्र में विकासवाद और आध्यात्मिक क्षेत्र में आस्तिकवाद का विशेष महत्व रहा है। इन दोनों विषयों पर विश्व में खूब चर्चा–परिचर्चाएं होती रही हैं। इनके पक्ष–विपक्ष में लाखों की संख्या में लोग अपने–अपने तर्क या कुतर्क भी प्रस्तुत करते रहे हैं। विकासवाद के समर्थन में तर्क और तथ्य आज तक वैसे नहीं प्रस्तुत किए जा सके हैं जिससे इस विषय को निर्विवाद माना जाता। मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूं। इसलिए विकासवाद में डार्विन, लेमार्क और नव विकासवाद को पढ़ा–समझता रहा हूं। किसी भी सिद्धांत का खंडन इस लिए नहीं करना चाहिए, क्योंकि हम उसे मानते नहीं, अपितु इस लिए करना चाहिए कि उसके समर्थन में दिए जाने वाले तर्क और तथ्य सत्य की कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं। यह विचार या धारणा भी ठीक नहीं हैं कि लोगों ने उस सिद्धांत को मान लिया या अमान्य कर दिया, इसलिए वह मान्य नहीं हो सकता। निष्पक्ष और गवेषणात्मक दृष्टि से ही किसी सिद्धांत या विषय की गवेषणा या विवेचना करनी चाहिए। पिछले अंक में विकासवाद पर मैंने कुछ तर्क और तथ्य प्रस्तुत किए थे। सुधी पाठक ही बताएंगे कि मेरे तर्क और तथ्य से वे कहां तक और क्यों सहमत–असहमत हैं। प्रस्तुत लेख विकासवाद और आस्तिकवाद के साथ भाषा विकास को समझने–समझाने का छोटा–सा प्रयास है।

नव विकासवाद और नवीन विज्ञान के सिद्धांत

विकासवाद पर अपनी सम्मति देते हुए सर ओलिवर लॉज कहते है– विकास तो कली से फूल अथवा बीज से फूल अथवा बीज से वृक्ष बनाने वाला नियत नियमित नियम है। इसका अर्थ है कि परिस्थिति, संयोग, अवसर और इत्तिफ़ाक़ आदि शब्दों से जो भाव अब तक निकाला जाता था वह अब नहीं निकल सकता। दूसरी बात, अमीबा से लेकर अब तक मनुष्य बनने तक न जानें कितनी कड़ियाँ जुड़ती हैं। डारविन महोदय इन कड़ियों के सम्बंध में कोई मान्य उत्तर नहीं देते। इस लिए डारविन का विकासवाद भले पढ़ाया जाता हो, लेकिन यूरोप में ही इसके परखच्चे उड़ गये। तकरीबन 60 वर्ष पूर्व डारविन के विकासवाद के उलट अर्थात् बंदर से मनुष्य बनने के सिद्धांत के विरुद्ध मनुष्य से बंदर बनने का सिद्धांत भी आया। इस सिद्धांत के अनुसार पूर्वातिपूर्व काल में मनुष्यों ने ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में खूब उन्नति कर ली थी। इस लिए उनके शिर कमजोर होते गये। कुछ वर्षों में वे असभ्य जंगली बन गये। उनमें से कुछ बनमानुष तो कुछ बंदर बन गये। यह सिद्धांत डारविन के सिद्धांत से अधिक मान्य और तर्कसंगत लगता है। इसका कारण है। इसे भाषा के द्वारा हल किया जा सकता है। विश्व की सबसे पुरानी पुस्तक के रूप में मान्य ऋग्वेद की भाषा जितनी परिमार्जित, वैज्ञानिक और व्याकरणिक है वैसी भाषा आजतक दूसरी विश्व में नहीं मिलती। आधुनिक भाषाएं भी ऋग्वेद की भाषा से ही निकली हैं। दूसरी बात। अमीबा को सृष्टि का प्रथम एककोशिकीय जीव मानने वाले अब अपनी बातों को हठ पूर्वक न कहकर आग्रह पूर्वक कहने के लिए विवश हो रहे हैं। नव विकासवाद सृष्टिकर्ता के रूप में किसी अदृश्य सत्ता को कार्य–कारण सिद्धांत के रूप में स्वीकार करने लगा है। अर्थात् वैदिक विकासवाद को प्रकरांतर से मान्यता मिलने लगी है। लेकिन अभी बहुत कुछ समझने–समझाने की आवश्यकता है। हम कुछ विशेष बिंदुओं पर नव विकासवाद के उदारवादी सिद्धांतों और उसके असुलझे विचारों को समझ सकते हैं। ये बिंदु इस प्रकार हैं –

1. नव विकासवाद कली से फूल बनने की प्रक्रिया को विकासवाद मानता है। और जो प्राणी सृष्टि के आरम्भ में जैसा बना था, आज भी उसी रूप में पैदा हो रहा है। मछली से विकास होते–होते हाथी तो नहीं बन सकता।

यह ठीक है, लेकिन जड़ से चेतन की उत्पत्ति असम्भव है।

2. विकास बुद्धि के स्तर पर हुआ और शरीर के स्तर पर भी। इसके अतिरिक्त डीएनए (डी आक्सरिबो न्यूक्लिक अम्ल) और आर एन ए (रिबो न्यूक्लिक अम्ल) के परिवर्तन से प्राणियों के विकास का सिद्धांत भी अमान्य हो चुका है। नवविकासवाद नियम बद्धता को प्राथमिकता देता है। जबकि डारविन का विकासवाद में कोई सिद्धांत नहीं है, वहां केवल अनुमान लगाया गया है। इसलिए नवीन वैज्ञानिकों का क्रमबद्ध विकासवाद अधिक तर्कसंगत लगता है। लेकिन यह भी पूरी तरह मान्य नहीं हो सकता।

3. डारविन के विकासवाद के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में एक कोशिकीय प्राणी से बहु कोशिकीय प्राणी बनें। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया गया कि एक कोशिकीय प्राणी कहां से आया? और यदि निर्जीव से प्राणी जन्म लेता है तो आज निर्जीव से कोई प्राणी जन्म क्यों नहीं लेता? इसलिए सृष्टिकर्ता ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में जिस तरह के प्राणियों को जन्म दिया वे आज भी उसी तरह बनें हुए हैं, यह वैदिक विकासवाद का सिद्धांत अधिक तर्कसंगत और तथ्यसंगत लगता है।

4. यदि विकासवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी का विकास हो रहा है, लेकिन बंदर से मनुष्य बनने के बाद अब मनुष्य का विकास आगे क्यों नहीं होता दिखाई देता? ध्यान रहे, नव विकास वाद डारविन के विकासवाद से भिन्न है।

5. आधुनिक विज्ञान के महान् आचार्य डॉ. जे.ए. फ़्लेमिंग के अनुसार, साइंस के स्वाध्याय से हमको इस प्राकृतिक जगत् में क्रम, योजना, धारणा और विचार दिखलाई पड़ते हैं। ये बातें इत्तिफ़ाक से, अचानक नहीं आ गईं। ये विचार और चैतन्य की सूचना देती हैं। फ़्लेमिंग कहते हैं – ''यह संसार केवल वस्तु नहीं है प्रत्युत यह विचारमय है जो बिना विचारवान् के कभी हो नहीं सकता। इस संसार में एक सर्वव्यापक चैतन्य विचारवान् सत्ता भासित होती है, जिसका हम भी एक नमूना हैं।'' फ़्लेमिंग के इस विचार से यह बात समझ में आ जाती है कि जड़ पदार्थों से सृष्टि–उत्पत्ति की कल्पना, केवल कल्पना से अधिक कुछ नहीं है। नव विकासवाद से डारविन का विकासवाद के सिद्धांत को उलट दिया गया। इसलिए वैदिक विज्ञान का सिद्धांत जो सृष्टि को एक चेतन सत्ता के द्वारा सृजित और संचालित माना गया है, पूरी तरह तथ्यपरक और तर्क संगत लगता है।

6. जीव विज्ञान का प्रारम्भिक विकासवाद कल्पना पर आधारित है। कल्पना कोई सिद्धांत नहीं हो सकती। इस दृष्टि से नव विकासवाद जो क्रम और सिद्धांत पर आधारित है, सृष्टि विकास को समझाने में काफी हद तक सफल दिखाई देता है, लेकिन कई असुलझी बातें हैं जिस पर नव विकासवादियों को समझना चाहिए। जैसे, आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते समय नव विकासवादी आत्मा को भी भौतिक पदार्थों का संघात बताते हैं, यह बात समझ में नहीं आती। क्या कभी जड़ पदार्थों से चेतना का उद्भव संभव हो सकता है? यदि हो सकता है, तो वैज्ञानिकों को पदार्थों से आत्मा बनाने का प्रयास करना चाहिए। ध्यान रहे, आज तक आत्मा भी परमात्मा की तरह एक रहस्यमय वस्तु या सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा। नव विकासवादियों को इस पर ध्यान देना चाहिए कि पदार्थों के संघात से कोई नया पदार्थ रहस्यमय कैसे हो सकता है। आत्मा इतना सूक्ष्म है कि इसे न तो सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकता है और न तो नंगी आंखों से ही। इसलिए इस विषय पर नव विकासवादी भी अभी आगे नहीं बढ़ पाये हैं। सकता। विद्या के साथ–साथ पारदर्शी उद्देश्य, कठिन परिश्रम, सत्य का सहारा और आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। भौतिकवाद का साम्राज्य बाजारवाद और भौतिक संसाधनों के साथ विश्व में निरंतर बढ़ रहा है। बाजारवाद और भौतिक साम्राज्यवाद ने मनुष्य को इस कदर उलझा दिया है, अपने मकड़जाल में फंसा लिया है उससे निकलना लगभग असम्भव हो गया है। इसलिए विद्या की आवश्यकता है। ऐसी विद्या जो बाजारवाद और भौतिक साम्राज्यवाद के चकाचौंध से बचाए और सही मार्ग पर ले जाने के लिए युक्ति और मंत्र बताए।

नव विकासवाद और उस पर किए जाने वाले प्रश्न

आधुनिक विज्ञान से अब तक यह नहीं जाना जा सका है कि चैतन्य कैसे बनता है? गौरतलब है आधुनिक विज्ञान मानता है कि प्राटोप्लाज़्म में जो शहद की तरह पदार्थ भरा होता है वह कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और फास्फोरस आदि 12 भौतिक पदार्थों से ही बना है। ये भौतिक पदार्थ परमाणुओं से ही बन जाते हैं और जीव भी भौतिक पदार्थों से बन जाता है। अब

प्रश्न यह है कि जड़ वस्तु से चेतन सत्ता या चेतन वस्तु का आविर्भाव कैसे हो सकता है? दूसरी बात। आधुनिक विज्ञान ने यह रहस्य उजागर नहीं किया कि यदि जड़ पदार्थों से चेतन्य पदार्थों का आविर्भाव होता है तो शरीर के मृत्यु का क्या मतलब? शरीर से आत्मा के निकल जाने के बाद शरीर तो बचता ही है, जब भी तो पदार्थों का संघात बना रहता है। यदि आत्मा का आविर्भाव जड़ पदार्थों से होता है तो मृत्यु का कोई अर्थ ही नहीं। नवीन विज्ञान के अनुसार आत्मा प्रतिक्षण बदलता रहता है। वैज्ञानिकों के अनुसार आत्मा के परमाणुओं की गति प्रति सेकेन्ड एक लाख माइल की है। अब विचार करने की बात यह है कि अलग–अलग रहकर किस प्रकार इतने तेज चलने वाले परमाणु किस प्रकार अपना ज्ञान दूसरे परमाणु में डालते हैं या ज्ञान उड़कर दूसरे परमाणु में पहुंच जाता है और चैतन्य स्थापित रहता है। यह विचार या सिद्धांत कितना हास्यापद है। पहली बात तो यह है कि परमाणु कोई चेतन वस्तु या सत्ता नहीं कि वह दौड़कर या उड़कर अपना ज्ञान अपने दूसरे समकक्ष को बांट आए। मनुष्य को पढ़ाया या सिखाया हुआ ज्ञान भी इस तरह से सुरक्षित नहीं रहता और परमाणु का ज्ञान दूसरे के द्वारा हमेशा के लिए कैसे सुरक्षित हो जाता है? ज्ञान को यदि ऊर्जा भी माना जाए या भाव भी समझा जाय तब भी समझ में नहीं आता कि क्या परमाणुओं के पास कोई ऐसी युक्ति, गुण, स्वभाव या अन्य कोई तरीका है जो दूसरे परमाणुओं को इतनी तेज गति से ज्ञान देने में सक्षम रहते हैं कि कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता? एक बात और। परमाणुओं में ऊर्जा, ज्ञान, भाव या अन्य जो भी नाम दे दों, कहां से आया? यदि इसका उत्तर नव विकासवादियों के पास नहीं है तो डारविन के विकासवाद के आस–पास ही नव विकासवाद भी मडराता दिखाई देता है। क्योंकि अभी चैतन्य की उद्भावना चैतन्य से न होकर जड़ पदार्थों से ही स्वीकार की जा रही है।

बिग होल (महाविस्फोट) और परमाणुओं के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति की परिकल्पना आधुनिक विज्ञान का सिद्धांत है, लेकिन इस सिद्धांत से यह पता नहीं चलता कि इस महाविस्फोट के बाद चेतना कहां से आई और इसका विकास कैसे तरह हुआ। और महाविस्फोट और परमाणु आएं कहां से? दूसरी बात। बिना चेतना के कोई नया उत्पादन कैसे होगा? अर्थात् सृष्टि आगे कैसे बढ़ेगी। और कर्ता के बिना कार्य कैसे संभव है? विज्ञान कहता है, सब कुछ खुद–ब–खुद हुआ। लेकिन प्रश्न यह है कि खुद–ब–खुद कैसे हो गया। कोई जड़ वस्तु से आज तक कोई नई वस्तु या सत्ता का उद्भव हुआ ही नहीं, फिर यह अचानक कैसे हो गया?

वेद में 'हिरण्यगर्भ' से सृष्टि उत्पन्न होने की बात कही गई है। हिरण्यगर्भ परम चेतन सत्ता है। हिरण्यगर्भ से सृष्टि का एक क्रम चलता रहता है। सब कुछ नियम के अनुसार। लेकिन विज्ञान का विकासवादी सिद्धांत यह नहीं समझा पाता कि सृष्टि निर्माण का सिद्धांत क्या है, जिससे समझा जा सके कि जीवन का उद्भव उक्त नियम या नियमों के अनुसार हुआ। गौरतलब है निर्जीव से जीव की उत्पत्ति का सिद्धांत उतना ही खोखला है जितनी कि बालू से तेल निकालने का दावा करना। भौतिक विज्ञान से जीव विज्ञान की उत्पत्ति हमारे समझ से परे है। विश्व के वैज्ञानिकों को जीव की उत्पत्ति को लेकर 'पदार्थ' से आगे बढ़कर किसी चेतन सत्ता की शाश्वतता को स्वीकार किये बिना सृष्टि–उत्पत्ति के रहस्य का उद्घाटन नहीं किया जा सकता जो तर्कसंगत, तथ्यपरक और सिद्धांत परक हो।

एक महत्वपूर्ण विषय यहां नव विकासवादियों के सम्मुख रखना उचित समझता हूं। वह विषय है गुण, कर्म और स्वभाव का। परमाणुओं के महाविस्फोट से सृष्टि निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या परमाणुओं में वे सभी गुण हैं जो किसी प्राणी के शरीर में स्थित इन्द्रियों में देखा जाता है? जैसे पांच कर्म इन्द्रियों के गुण–कर्म–स्वभाव और पांच ज्ञान इन्द्रियों के गुण–कर्म–स्वभाव। क्या परमाणुओं में स्वतंत्र रूप से ये गुण देखे जाते हैं? जैसे– देखना, सुनना, स्पर्श करना, कहना, चखना, मनन करना आदि। सभी जानते हैं जड़ परमाणुओं में ये कोई भी गुण आंतरिक या बाह्य रूप से निहित नहीं होते। लेकिन जब हम आत्मा की सत्ता मान लेते हैं और पंच तत्वों वाली जड़ शरीर का संचालक चेतन आत्मा के द्वारा मान लेते हैं तो आत्मा में निहित गुण शरीर में प्रकट होने का नियम स्पष्ट द्रष्टव्य होने लगते हैं। उपनिषदकार कहता है– एष ही द्रष्टा स्पष्टा श्रोता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। अर्थात् देखने वाला, छूने वाला, सुननेवाला, सूँघने वाला, चखने वाला, मनन करने वाला और कार्य करने वाला विज्ञानी आत्मा है। आत्मा की सत्ता का अनादि मान लेने

से सृष्टि–उत्पत्ति का क्रम और विकास भी ठीक–ठीक समझ में आने लगता है। इसी तरह सृष्टि निर्माण के लिए प्रकृति की शाश्वत सत्ता और सृष्टि–नियंता की शाश्वत सत्ता स्वीकार करने से जड़ से चेतन उत्पत्ति की कल्पना करने की भी आवश्यकता नहीं है। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि–उत्पत्ति का सिद्धांत इसी में समावेशित हो जाता है। उपनिषदकार ने जीव की सत्ता के लिए जो बातें लिखी हैं अब पश्चिम के वैज्ञानिकों को भी धीरे–धीरे स्वीकार होने लगी है। 40 वर्ष पर्वू मस्तिष्क शास्त्र के जन्मदाता गॉज कहते हैं –'मेरी सम्मति में एक ही निरवयव वस्तु है जो देखती, सुनती, स्पर्श करती, और प्रेम, विचार तथा स्मरण आदि करती है, लेकिन अपने कार्य के लिए मस्तिष्क में अनेक भौतिक साधन चाहती है।' मेरे विचार से नव विकासवादियों को समग्र रूप से अपनी कल्पनाओं और धारणाओं को मि. गॉज की बातों पर विचार करना चाहिए। जब से पश्चिम में भौतिक विज्ञान की उन्नति हुई, वे पूर्व के किसी वैज्ञानिक नियम या विचार को महत्व नहीं देते हैं। यही कारण है कि वेदों की सृष्टि विद्या के सिद्धांत पर उनकी दृष्टि कभी गई ही नहीं। अव्वल वे भारत को आज भी पिछड़ा हुआ और अविज्ञानी देश मान रहे हैं। अब धीरे–धीरे उनकी दृष्टि भारत की ओर आ रही है, लेकिन जैसे ऋग्वेद की भाषा को उन्होंने सबसे प्राचीन भाषा मान लिया है, उसी तरह से एक दिन वेद में वर्णित सृष्टि विज्ञान को भी समझ लेंगे तो, मान सकते हैं।

भाषा विकास का वैज्ञानिक पक्ष

आधुनिक विज्ञान नैमित्तिक ज्ञान को नहीं मानता। वह जब सृष्टि की रचना अचानक, फिर क्रम से, फिर महाविस्फोट से जैसी बातें कहता आया है। अर्थात् सृष्टि विज्ञान का सिद्धांत आधुनिक विज्ञान में लगातार बदलता रहा। आज भी सर्वसम्मति से यह नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक विज्ञान का सृष्टि –उत्पत्ति सिद्धांत 'उक्त नियम' के अनुसार है, जिस पर प्रश्न नहीं किए जा सकते हैं। यदि प्रश्न भी किए जा सकते हैं तो उनके समाधान भी आधुनिक वैज्ञानिक देने में सक्षम हैं। इस दृष्टि से वैदिक सृष्टि विज्ञान अधिक तर्कसंगत और तथ्यपरक है। इसी तरह भाषा विज्ञान का विकास–क्रम भी वैदिक भाषा विज्ञान के अनुसार अधिक तर्कसंगत और मान्य है। इसके संदर्भ में जो तर्क दिये जाते हैं, वे प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त जान पड़ते हैं। वैदिक विकासवाद के अनुसार नैमित्तिक ज्ञान के बिना मनुष्य ज्ञानवान् कदापि नहीं हो सकता। नैमित्तिक ज्ञान का अर्थ है जो किसी निमित्त से प्राप्त हो। लेकिन आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य स्वयं करते–करते सीखता, बोलता और पढ़ता है। उसने धीरे–धीरे समूह में रहना सीखा, गुफाओं में रहा और फिर जब ज्ञान हो गया तो वह लकड़ी, फिर पक्के मकानों में भी रहने लगा। इसी तरह उसने पत्थर, लकड़ी के औजार बनाते हुए लोहे और अन्य तरह के औजार बनाने लगा। प्रश्न यह है कि मनुष्य बिना सिखाए तो कुछ सीखने की स्थिति में होता ही नहीं है। यदि किसी मानव के बच्चे को जगंल में छोड़ दिया जाय तो वह जगंल के जिस प्राणी के साथ रहेगा उसका स्वभाव, गुण और कार्य सीखेगा, न कि स्वयं वह चलना, बैठना, बोलना मनुष्य के साथ रहने वाले बच्चे की तरह सीख जायेगा। नव विकासवाद में यही बहुत बड़ी भूल है जिसपर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस अंक में बस इतना ही, शेष अगले अंक में भाषा विकास विज्ञान पर लिखा जायेगा।

कार्य -- जो किसी पदार्थ के संयोग विशेष से स्थूल होके काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है; वह उस कारण का "कार्य" कहाता है।

सृष्टि -- जो कर्ता की रचना करके, कारण द्रव्य, किसी संयोग से विशेष अनेक प्रकार कार्यरुप होकर वर्तमान में व्यवहार करने के योग्य हैं; वह "सृष्टि" कहाती है।

जाति -- जो जन्म से लेके मरण पर्यन्त बनी रहे। जो अनेक व्यक्तियों मे एक रुप से प्राप्त हो। जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं; वे "जाति" शब्दार्थ से लिये जाते हैं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

FOURTH DUTY : RESPECT TO GUESTS

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

In Vedic Culture, Atithi-yajna or Atithi-pooja is one of the important duties of the house-holders. But the term 'atithi' is generally mistaken. It is taken for an invited person, any guest, a visitor, a relation, a personal or business friend, or a client. But these people are simple guests, not atithis. The service required to them comes within the purview of normal decency, courteous behaviour general hosting and social pleasantry. It certainly does not require a special and obligatory duty to be provided under the Social Code. In fact, the concept of an atithi is something deeper than the one mentioned above.

Since the house-holders are often occupied with their own business having circular problems and solutions, they have neither the time nor the energy for the common cause. Besides, most of them are self- centred and their individual egos and vested interests harm the common interests and even create complicated problems for mankind in general. So the common cause is taken by the philanthropists; thinking, working and promoting the social, national, universal and spiritual life.

These pioneers are termed as 'atithis', and it is an obligatory duty of house-holders to serve them with food, shelter and money. The term 'atithi' means one who has no fixed date of arrival. The atithis are generally of three categories, viz., the social reformers, the nation builders, and the promoters of world peace. These are the real atithis for whom the Vedic Culture has made special provision.

According to Rishi Dayanand, 'As long as there are no atithis of the highest order in the world, progress cannot be made. As they go about to all places, teaching and preaching the truth, no hypocritical and fraudulent practices can flourish. The house-holders can also attain true spiritual knowledge conveniently, and the true religion prevails among all men. Without real atithis, doubts cannot be dispelled, without it there is no firm faith, and without it no happiness.'

That is why a high esteemed place has been fixed for the atithis in Vedic Culture. The Tattiriya Upanishad preaches, 'Atithi Devo Bhava.'

The original forms of social provisions are generally good. But with the passage

of time, these forms are denatured and become deforms. People begin to confuse these deforms with the original forms. These deforms create complexities one after another to result into social injustice, exploitation of the weak, and a number of malpractices. Then it becomes expedient to reverse the deforms, and revive the original forms that come to be known as reforms.

Since human life is a continuous process, these forms, deforms and reforms replace each other in a cyclic order. The deforms go slowly but steadily for a long period to be counted in decades and centuries. The reforms are speedy but animated only for a couple of years. They are again attacked by deforms, and the cycle moves its way.

The social deforms occur in the form of man-woman rivalry, unsuitable marriages, dowry practice, family disorder, casteism, or the like. So the social reformers have to work two ways : first, to introduce the rational and humane provisions, and secondly, to convince and persuade the individuals to accept and follow them.

Man and woman are equal, if not similar. In Vedic Culture, at the time of marriage ceremony, the bride and bridegroom take seven steps together. At the seventh step they speak, 'Let this be for our friendship.' It means that they are friends; equal in rights and duties. Thus the Vedic Culture stands for equality between man and woman. Logic also proves this equality. We find no mathematical problem that only a man can solve; no kitchen dish that only a woman can prepare; no disease that only a man can cure; no musical instrument that only a woman can play; or vice versa. Both are equal, not similar.

Casteism is a hazardous deformity crept into Vedic Society. The original Four Class Order was not based on heredity. It was rather based on ability and occupation. Somehow the Varna-Vyavastha has taken the form of a hereditary casteism. During the medieval period, taking the immoral and illegal advantage of their birth position, the upper classes exploited the weaker class to limitless extents. Unfortunately, there are crores of people even today who misunderstand this deform to be the original form. They are mistaken, and this hereditary system must be done away with.

Because of the miseries of the caste-system, some Reactionists demand for a classless society. But knowledge, valour, trade and labour are the universal factors differentiating between person and person. Human society has different standards making the classes inevitable for the survival of human culture. If a finger is wounded, it is not wise to cut it off. It should rather be treated with care, patience and will. Hence the social reformers should

organise themselves to bring the social order to its original form, convincing and persuading the people with love, logic and patience.

The true atithis who are the pioneers of social reforms, nation building and world peace, are always surrounded by problems, challenges and foes. They have to solve their own problems themselves. Along with this, they struggle to solve the social problems, and that too without any vested interest. For this they must be honoured and respected. In fact, they should be revered most. Practically, the greatest reverence is accorded to parents. But parents promote the interests of their own sons and daughters. The atithis promote the interests of entire mankind. Their task is comparatively more difficult, and it is purely philanthropic as well.

So, the atithis deserve the reverence of one and all. We must serve them with food, clothes and shelter. We should also consult, obey, follow and support them. This is the Fourth Duty of the house-holders under the Vedic System of life.

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते।

(ऋ० ९.८३.१)

जिसने शरीर को नहीं तपाया वह सुख नहीं पा सकता।

यज्ञ–सन्ध्या

'सम् ध्यायन्ति, सम् ध्यायते वा परब्रह्म, यस्यां सा सन्ध्या';

परमेश्वर का ध्यान करते हैं लोग, या उसका ध्यान किया जाता है, जिस क्रिया में, वह सन्ध्या है।

- सन्ध्या = सन्ध्योपासन = ईशोपासन;
  सन्ध्योपासन प्रथम नित्यकर्म है;
  रात्रि और दिवस मिलते हैं दो बार;
  ये दो सन्धि-काल (सन्ध्या) हैं;
  दोनों 'सन्ध्या' करने की वेला हैं।

- ईशोपासन से राग-द्वेष दूर होते हैं;
  असन्तोष, तनाव, क्रोधादि घटते हैं;
  थकान मिटती,बैटरी रीचार्ज होती है;
  अभिमान जाता, सन्तोष आता है;
  सात्त्विकता, शान्ति प्राप्त होती है;
  दाता का धन्यवाद प्रकट होता है;
  ईश्वर का यथायोग्य सहाय मिलता
  और जीवन सन्तुलित होता है।

- हवन से वायुमण्डल शुद्ध होता है;
  दुर्गन्धित पदार्थों एवं रोगाणुओं को
  घी के परमाणु छिन्न-भिन्न करके
  यज्ञ-स्थान से दूर हटा देते हैं।

- अगरबत्ती, इत्र, पुष्प की गन्ध में
  वह भेदक, मारक क्षमता नहीं है,
  जो घी एवं हवन-गैस में होती है;
  अतः यज्ञ प्रतिदिन करना चाहिए।

- यज्ञ-मन्त्रों में दिव्यतम विचार,
  शुद्धतम भावना, उच्चतम प्रेरणा एवं
  सर्वहित की सर्वोत्तम शिक्षाएँ हैं।

- इनसे याजक को आरोग्य, तेज,
  ओज, उत्साह, दूरदृष्टि, कर्मठता,
  राष्ट्रप्रेम, विश्व-बन्धुत्व की भावना
  और योग-क्षेम प्राप्त होते हैं।

- सूर्योदय से पहले सन्ध्या और
  सूर्योदय पर यज्ञ करना धर्म है;
  सायं सूर्यास्त से पहले यज्ञ और
  तत्पश्चात् सन्ध्या का नियम है।

– ✍ आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक'

वेदों में आततायी व आतंकवाद को समाप्त करने का जीवन्त वर्णन

– डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

वेद सर्व विद्या युक्त और ज्ञान–विज्ञान के ग्रंथ कहे जाते हैं। इसके कहने के पीछे, इसमें वर्णित अनेक विद्याओं, विज्ञानों, सिद्धान्तों, विषयों, क्षेत्रों, संस्कारों और व्यवहारों का समावेश है। जो लोग वेद को मात्र धर्म या अध्यात्म का ग्रन्थ मानते हैं या तन्त्र–मन्त्र, जादू–टोने का ग्रन्थ मानते हैं, उन्हें समग्र समावेशित विद्याओं को एक बार पूरे मन–वचन–कर्म से स्वाध्याय अवश्य कर लेना चाहिए। वेदों के सम्बन्ध में विश्व के विद्वानों, शोधार्थियों, जिज्ञासुओं और जन–सामान्य को अनके प्रकार के संदेह और भ्रान्तियाँ हैं। उन संदेहों और भ्रान्तियों के कारण वेदों के स्वाध्याय के प्रति वैसी रुचि लोगों में नहीं देखी जाती जैसी अन्य धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंन्थों के प्रति देखी जाती है। दूसरा कारण, वेदों के प्रचारकों–प्रसारकों ने भी वेदों के प्रचार–प्रसार में वैसी रुचि नहीं ली जैसी अन्य ग्रन्थों के पाठकों और प्रसारकों में देखी जाती है। विश्व के सबसे पुरातन और सनातन गौरव ग्रन्थ होने के उपरान्त भी भारतीयों में भी, विशेषकर आर्य सामाजियों और हिन्दुओं ने भी वेद को विश्व स्तर पर प्रचारित–प्रसारित करने के लिए वैसा उद्यम नहीं किया, जैसा कि करना चाहिए था। इसका परिणाम यह हुआ कि वेदों में वर्णित विद्याओं के सम्बन्ध में शिक्षित–अशिक्षित लोगों में जानकारी अत्यन्त न्यून है। हनुमान चालीसा, गीता, रामचरित मानस जैसे लौकिक ग्रन्थों के छोटे–छोटे गुटके पढ़ने को मिल जाते हैं। ऐसा ही वेदों के मन्त्रों के व्यवहार में आने वाले उपयोगी गुटके प्रकाशित कराकर वितरित करना–करवाना चाहिए। इससे वेदों का ज्ञान जन मानस में तीव्र गति से फैलेगा और लोगों को वेदों के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों और संदेहों से भी निवृति मिलेगी। प्रस्तुत लेख वेदों में वर्णित आज की सबसे विकट समस्याओं में से एक, आतंकवाद के सम्बन्ध में वेदों में वर्णित मन्त्रों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। आशा है पाठकगण लाभ उठाएंगे। डॉ. विक्रम कुमार विवेकी की पुस्तक से लिया गया यह लेख कई दृष्टियों से उपयोगी है।

–सम्पादक

जहाँ वेद शान्ति के अग्रदूत हैं और शान्ति–मन्त्र के माध्यम से भूलोक, द्युलोक व अन्तरिक्ष लोक में सर्वत्र शान्ति की प्रस्थापना के लिए आतुर प्रतीत होते हैं वहाँ कुछ वैदिक ऋचाएँ अत्याचारियों के अत्याचार व उन के द्वारा किये जा रहे नरसंहार, आतंक व हिंसा को जड़मूल सहित उखाड़ फेंकने के रोमांचकारिी वर्णन प्रस्तुत करती हैं। जैसे –

उद् वृह रक्षः सहमूलामिन्द्र। (ऋ. 3/30/17)

अर्थात् हे वीर! राक्षस को जड़ समेत उखाड़ फेंक।

प्रेहि अभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्र जया अपः अर्चन्ननु स्वराज्यम्।। (ऋ.1/80/3)

अर्थात् हे वीर! आगे बढ, शत्रु पर वार कर, उसे परास्त कर। तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता। शत्रु को कुचल देने वाला बल तुझ में है। आततायी को मार दे। तेरी जिन प्रजाओं को शत्रु ने पकड़ लिया है, उन्हें जीत ला। स्वराज्य का तू आराधक बन।

अथर्ववेद की ऋचा में हमें उद्बोधन है कि जो हमारी हिंसा करने आये, उसे हम नष्ट–भ्रष्ट कर दें। सेना के साथ धावा बोलने वाले को नीचा दिखा दें –

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।

(अथर्व. 1/21/2)

जो पिशाच आतंकी हम सोये हुओं को, जागते हुओं को, खड़े हुओं को या चलते–फिरते हुओं को अपने कुकृत्यों से डरा देना चाहता है उसे तू आक्रान्ता बनकर व सेनापति के साथ मिलकर भस्म कर दे –

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात्तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः। .....तान् प्रतीचो निर्दह..... ।।

(अथर्व. 7/108/2)

वैदिक ऋचा में 'तामसास्त्र' नामक अस्त्र की भी चर्चा है। जिससे दिन में भी अन्धेरा छा जाता है।

जयद्रथ के वध के लिए अर्जुन ने इस अस्त्र का प्रयोग किया था–

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात्।।
(अथर्व. 3/2/6)

अर्थात् हे वीरो, जो शत्रुओं की सेना स्पर्धा करती हुई ओज व तेज के साथ हमारी ओर बढ़ी चली आ रही है, उसे निकम्मा बना देने वाले 'ताम्रसास्त्र' से बींच दो, उसे निकम्मा आच्छन्न होकर एक–दूसरे को पहचान भी न पायें। शत्रुओं के बीच खड़े होकर यह घोषणा कर दो–हे शत्रुओ! जैसे तुम धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए सर–शन्धान करते हुए, बाण छोड़ते हुए हमारी ओर दौड़े चले आ रहे हो, अब तुम निहत्थे हो जाओगे, हमारा सेनापति आज तुम्हारे छक्के छुड़ा देगा–

आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थन इन्द्रो वोऽद्य पराशरीत।।
(अथर्व. 6/66/2)

अर्थात् हमारी ताकत भूमि व आकाश मार्ग में भी हार न माने, हमारा विजय रथ समुद्र और पहाड़ों में भी न हारे। शत्रु–दल को तोड़ते–फोड़ते, मारते–कुचलते हुए हम आगे बढ़ें। लाल–पीला चेहरा दिखाने वाले बहुरुपिये पिशाच की दाढ़ को हम फोड़ डालें तथा आतंकाकारी व अकारण हमारा वध करने वाले का भोजन भी हम छीन लें, उस का राशन–पानी बन्द कर दें –

सिंहप्रतीको.....शत्रूयतामा खिदा भोजनानि।।
(अथर्व 4/22/7)

इस प्रकार शताधिक मन्त्र शत्रु को चूर–चूर कर देने के लिए हमें प्रेरित करते हैं। आज जब दुनिया आग की ढेर पर खड़ी है। विश्व के शक्तिशाली चौकीदार के घर आग लगी है और आज का अर्जुन अपने गाण्डीव को उतार कर खूंटी पर टांगे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ा है तब हमें वेदों के उद्‌बोधन के अनुसार कृत संकल्प होकर आतंकवाद की जड़ों पर कुठाराघात करना ही होगा। विश्व को सर्वतन्त्र व सार्वभौम वेद के सिद्धान्तों को मानना ही होगा, इस के सिवाय कोई अन्य रास्ता नहीं है। मनु ने कहा है –

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।

अर्थात् आतंकी को देखते ही आरम्भ में ही गोली मार दो, यही शान्ति का एक मात्र उपाय है।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल/ कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

हिन्दी, देवनागरी और अनुशासन

– ✍ डॉ. सीतेश आलोक

हमें अपनी भाषा, संस्कृति और कलाओं पर गर्व करने का अधिकार है। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को भाषा, संस्कृति और कला के साथ–साथ जीवन बसर करने का लोकतान्त्रिक अधिकार मिला हुआ है। स्वतंत्रता के पूर्व विदेशी राज्य के नियम–कानूनों को मानने की बाध्यता थी, लेकिन आज प्रत्येक व्यक्ति हर तरह से स्वतंत्र है। उसे भाषा, संस्कृति और रहने का स्थान चुनने की स्वतंत्रता है। लेकिन इस स्वतंत्रता ने हम भारतीयों को 'उन्मुक्त' या 'स्वछन्द' भी बना दिया है। जिस कारण, भाषा, संस्कृति और अन्य कई विषयों और क्षेत्रों में मिलावट होते–होते, भाषा और संस्कृति की शुद्धता, लगभग समाप्त ही हो गई है। हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में मिलावट के कारण मिश्रित हो गई हैं। इससे भाषाई शुद्धता का संकट खड़ा हो गया है। आज की हिन्दी वर्तनी के स्तर पर ही नहीं, शब्द और प्रयोग के स्तर पर भी 'हिंग्रेजी' या 'हिंग्लिश' बन गई है। इससे हिन्दी किस तरह दूषित हो रही है और उससे क्या–क्या हानियाँ हो रही हैं, बता रहे हैं हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. सीतेश ओलोक।

– सम्पादक

तब मैं आस्ट्रेलिया में था। वहाँ एक दिन मॅलबर्न में डीकिन युनिवर्सिटी के डीन, प्रो. फ्रैंसिस ट्रेसी से मिलना हुआ। वहाँ जब उनसे मेरा परिचय कराया गया तो हाथ मिलाते हुए उन्होंने मुस्कराकर मेरी आँखों में देखा–''आप हिंदी में लिखते हैं... मैंने सुना है कि हिन्दी में बिल्कुल वैसे ही लिखा जाता है, जैसे बोला जाता है।''

उनकी आँखो में आश्चर्य और प्रशंसा का भाव स्पष्ट झलक रहा था।

''जी हाँ, ऐसी ही है।'' देवनागरी के गुण जानते हुए भी मुझे सहसा लगा कि कितनी समृद्ध है हमारी भाषा और देवनागरी लिपि...संसार की अनेकानेक भाषाओं से अलग। ''लेकिन यह कैसे संभव है?'' इतनी सारी ध्वनियाँ हैं। उन्हें शब्दों में कैसे बाँध लेती हैं आपकी लिपि?'' अपनी बात बढ़ाते हुए उन्होंने पूछा। उनके प्रश्न के पीछे कोई जिज्ञासा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

''यह हमारी वर्णमाला का चमत्कार है.....''कहते–कहते मुझे लगा कि वास्तव में बड़ी ही समर्थ है हमारी लिपि, जो सारी .....लगभग सारी, ध्वनियों को लिपिबद्ध कर सकती है।

उनसे बात करने के बाद, स्वयं ही मेरा ध्यान देवनागरी की वर्णमाला पर गया और उसके विश्लेषण के प्रयास में मैं चमत्कृत होता चला गया। स्वर और व्यंजनों का वैज्ञानिक विभाजन...और फिर व्यंजनों में भी उनका वर्गीकरण, अत्यंत तर्क–संगत एंव वैज्ञानिक प्रतीत हुआ। यह वर्णमाला जिह्वा, होंठ, नासिका, मूर्धा, तालु, दंत आदि के सहयोग से क्रमानुसार अनेकानेक ध्वनियों को लिपिबद्ध करने का अनूठा प्रबंध है। कवर्ग, चवर्ग, आदि के अन्तर्गत पाँच–पाँच वर्ण हैं जो जिह्वा तथा दंत आदि को विभिन्न स्थानों तथा आकार में मिलाकर उत्पन्न होने वाली अनेकानेक ध्वनियों को लिपिबद्ध कर सकते हैं। सभी वर्गों के अंतिम व्यंजन, नासिका द्वारा निकलती हुई एक विशिष्ठ ध्वनि देते हैं।

हाँ यह अवश्य सच है कि इस देवनागरी लिपि की वर्णमाला के अक्षरों द्वारा हिन्दी से इतर भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ लिपिबद्ध नहीं की सकतीं...किन्तु कुछेक थोड़े से संशोधनों द्वारा अनेक ध्वनियाँ बड़ी ही सरलता से लिपिबद्ध की जा सकती हैं। उर्दू में प्रयुक्त अरबी, फ़ारसी की अनेक ध्वनियाँ इसका प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए ख़े, ज़ाल, ज़ोय, फ़े, क़ाफ़, आदि को बड़ी ही सरलता से देवनागरी में क्रमशः ख,ज,फ,क आदि के नीचे बिन्दु लगाने भर से समस्या हल कर ली गई है। भारतीय भाषाओं में तमिल आदि के कुछ उच्चारण हैं जिन्हें ल को कुछ अलग ढंग से लिखकर, अथवा ष के नीचे बिन्दु लगाकर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया

गया है। इसी प्रकार, अंग्रेजी की कुछ ध्वनियाँ, जैसे आ तथा तथा औ के बीच की ध्वनि को अर्ध–चन्द्र के प्रयोग द्वारा हल किया गया है। इसी प्रकार अ तथा ए के बीच की ध्वनि को भी अर्ध–चन्द्र के प्रयोग द्वारा उच्चारण का मार्ग निकाला गया है। इस प्रकार देवनागरी में डाक्टर और डौक्टर के बीच का उच्चारण का 'डॉक्टर' लिखकर और, लेखनी के लिए, पन तथा पेन के बीच का उच्चारण 'पॅन' लिख कर लिपिबद्ध किया जा सकता है।

किन्तु, दूसरी ओर, दुर्भाग्य यह कि स्वयं हिन्दी–भाषी ही अपनी इस विशिष्टता को भुलाते हुए, हिन्दी को सुगम बनाने के नाम पर भाषा को भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं। उच्चारण में श के स्थान पर स का प्रयोग करते हुए, देश, संदेश, प्रकाश, उपदेश, अवश्य आदि पर देस, संदेस, प्रकास, उपदेस, अवस्य तो सुनने में आते ही रहते हैं, किन्तु इधर अशुद्ध उच्चारण एवं अशुद्ध लिपि का प्रयोग और भी शब्दों में बढ़ता और तेजी से फैलता दिखाई दे रहा है।

किसी भी भाषा की उत्कृष्टता को बनाए रखने के लिए भाषा–भाषियों से अनुशासन की अपेक्षा की जाती है। उत्कृष्टता, जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, अनुशासन माँगती ही है। अनुशासन के बिना न तो सामाजिक जीवन चलता है और न व्यक्तिगत स्वास्थ्य ठीक रह पाता है। किन्तु आधुनिक समाज और जीवन में 'शार्ट–कट' के अभ्यस्त अधिकांश संसारी जीव अपनी 'काम–चलाऊ' जीवन शैली अपनाने से बाज़ नहीं आते। आप किसी जगह–बेजगह कचारा फेंकने वाले, या इधर–उधर थूकने वाले को टोक कर देखिए, तो बड़ी मासूम मुस्कराहट के साथ उसका यही उत्तर मिलेगा–''अरे साब, सब चलता है।'

इस 'शार्ट–कट' का एक प्रमुख रूप लिखित हिन्दी को भी एक अत्यंत भ्रष्ट रूप दे रहा है। बच्चों को सिखाना तो दूर की बात है, अधिकांश शिक्षक स्वयं ही नहीं जानते कि शुद्ध शब्द क्या है, और कैसे लिखा अथवा बोला जाए। कभी मुद्रण की जटिलता का हवाला देते हुए, तो कभी हिन्दी के प्रसार के नाम पर उसे सरल बनाने के बहाने, देवनागरी वर्तनी के साथ बड़ा खिलवाड़ हो रहा है। इसका एक प्रमुख उदाहरण है बिन्दु, चन्द्र बिन्दु आदि का प्रयोग। फलस्वरूप आप को दाँत के बदले दांत लिखा दिखाई देगा और आँत के स्थान पर आंत। तर्क यह दिया जाता है कि यह सरलता हिन्दी के प्रसार में सहायक होगी, अन्यथा जटिलता के कारण अहिन्दी भाषी क्षेत्रों तथा विदेशों में हिन्दी का प्रचार–प्रसार बाधित होगा। तर्क यह भी है कि लिपि में एक–जैसा होते हुए भी पाठक को यह ज्ञान दिया जा सकता है कि अमुक शब्द का, संदर्भ विशेष, उच्चारण किस प्रकार किया जाए। ऐसा तर्क देने वालों के पास अंग्रेजी उरदू आदि के उदाहरण भी हैं। जैसे लिखित शब्द 'उर्दू' को, उर्दू ही नहीं, अरदू भी पढ़ा जा सकता है। और यह भी कि अंग्रेजी में 'बी–यू–टी' को कोई बुट नहीं पढ़ता–बट ही पढ़ता है।

ये उदाहरण सही अवश्य हैं किन्तु हम सब जानते हैं कि इसके पीछे अंग्रेजी, उर्दू आदि के विद्यार्थियों को दी जाने वाली कड़ी 'ट्रेनिंग' रहती है। उर्दू के लिए परिवारों में बचपन से ही शुद्ध उच्चारण पर ध्यान देने के साथ मक़तबों–मदरसों में छोटी आयु से ही बच्चों को रटाने–पढ़ाने का काम बड़ी सख़्ती से किया जाता है। कुछ यही अनुशासन अंग्रेजी में भी है।

हमारे शब्दकोश ही शब्दों की वह वर्तनी नहीं देते जो उच्चारण को मार्ग–दर्शन दे सके। इसका सबसे भ्रामक रूप हमें आधे म को 'अं' के रूप में लिखने को मिलता है। फलस्वरूप, 'संबंध' हमें शब्दकोश में 'संबंध' लिखा दिखाई देता है। भाषा को सरल अथवा सुगम बनाने के नाम पर प्रकाशकों ने भी आँख बंद करके 'अं' को बिन्दु लगाना प्रारम्भ कर दिया है और अर्ध–चन्द्र का प्रयोग पूरी तरह समाप्त कर दिया है। परिणाम स्वरूप हमें दाँत, आँत, हँसी, रँगना आदि के स्थान पर क्रमशः दांत, आन्त, हन्सी, रंगना लिखा मिलता है, जिसे पढ़ने वाला सहज ही दान्त, आन्त, हन्सी, रन्गना भी पढ़ सकता है। इसी प्रकार 'अं' के बिन्दु का उपयोग, 'अर्ध म' के लिए भी प्रचलन में है। सम्बन्ध लिखने के लिए हर जगह, संबंध ही छपा रहता है। अनेक विद्यार्थियों ने मुझसे समय–समय पर पूछा है कि किसी अक्षर पर बिन्दु लगाने से 'अंग' अथवा 'अर्ध न' की ध्वनि तो स्वाभाविक लगती है, किन्तु 'अर्ध म' की ध्वनि कहाँ से आ जाती है। 'संबंध' को 'सन्बन्ध' क्यों न पढ़ा जाए? यह कैसे समझा जाए कि 'अं' का बिन्दु स पर तो 'आधे म' की ध्वनि देगा और वही बिन्दु ब पर लगकर 'आधे न' की ध्वनि देगा। भाषा सीखते समय विद्यार्थी यदि शब्दकोश में संबंध ढूँढ़ना चाहे तो, ध्वनि के आधर पर, वह स के

क्रम में, 'अर्ध म' के अन्तर्गत, सम्बन्ध ढूँढ़ने का प्रयास करेगा। वहाँ न पाकर उसे लग सकता है सम्भवतः हिन्दी में ऐसा कोई शब्द होता होता ही नहीं। यही समस्या सम्भव, सम्वाद, सम्पादन, सम्वेदना, सम्मान, आदि में भी आ सकती है।

इसी प्रकार एक शब्द है अम्बर, जो बहुधा अंबर के रूप में ही लिखा–छपा मिलता है। स्वाभाविक है, वह अम्बर भी पढ़ा जा सकता है। इसका एक दुरुपयोग देखने को मिला हमारे एक परिचित उर्दू के शायर, जनाब 'अम्बर देहलवी' के नाम में। वे अम्बर की तर्ज़ पर उर्दू में अनबर ही लिखते हैं–अलिफ़ नून–बे–रे। मैंने उन्हें नाम के हिज्जे अलिफ़–मीम–बे–रे करने की सलाह दी तो उन्होंने कहा–''भाई जान, इसे पहले अपनी हिन्दी में ठीक कराइए। उर्दू में हम लोग कताब लिख कर भी किताब पढ़ लेने के आदी हैं.....अरदो लिख कर उर्दू पढ़ लेते हैं।''

उर्दू की अपनी एक सीमा हो सकती है, हो क्या सकती है...है। अरबी–फ़ारसी लिपि की यह सीमा है। उसमें सभी स्वरों को लिपिबद्ध करने की क्षमता नहीं है और अर्धाक्षरों को, या संयुक्त अक्षरों को लिखने की क्षमता तो बिल्कुल नहीं है। इस कारण उसमें ब्राह्मण जैसे शब्द लिखे ही नहीं जा सकते । इस कारण से 'बरहमन' ही लिखेंगे और बोलेंगे भी।

अंग्रेजी में भी त, थ, ठ, द, ध आदि जैसे स्वरों को लिपिबद्ध करने की कोई विधि नहीं है। उसमें से कुछ को वे कुछ शब्द–समूहों द्वारा समझने तथा बोलने के अभ्यस्त हैं। द के लिए वे टी–एच–ई को मिलकार काम चलाते हैं। इसी प्रकार थ के लिए भी टी–एच मिलाकर उपयोग करने का विधान है। कहाँ, कौन सा वर्ण समूह कैसा स्वर देगा यह शब्दकोशों में आई.पी.ए. द्वारा सविस्तार वर्णित है। इसक शिक्षा बच्चों को ही नहीं, शिक्षकों को भी अनिवार्य रूप से दी जाती है।

अन्य भाषाओं की सुविधाओं–समस्याओं की बात छोड़कर यह ध्यान देना उचित होगा कि हमारी लिपि जो इतनी समर्थ है, उसका ठीक उपयोग होता रहे। उसे सरल बनाने के नाम पर अनुशासनहीनता को बढ़ावा न दिया जाए। पुनः रेखांकित करने योग्य बात यह है कि किसी भी भाषा में, किसी भी क्षेत्र में विकास के लिए, उसे सफल एवं अधिकाधिक प्रभावीशाली बनाने के लिए, शब्द–कर्मियों को अनुशासन का पालन करना होगा। हर अनुशासन में कुछ कठिनाई तो होती ही है, किन्तु अनुशासन–हीनता, देर–सबेर, पतन की ओर ही ले जाती है।

इसी तरह बिन्दु का दुरुपयोग उर्दू के शब्दों के साथ भी बड़ा ही अन्याय करता है। अपने को सुसंस्कृत एवं उदार दिखाने वाले अनेकानेक विद्वान् अपनी बोलचाल में उर्दू शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। या सम्भवतः यह दिखाने के प्रयास में कि उदारमना अथवा संकीर्ण मानसिकता से कहीं ऊपर उठे हुए, हिन्दू–मुस्लिम एकता के पक्षधर हैं। किन्तु अपने सम्भाषण में वे उर्दू के साथ कितना अन्याय कर रहे हैं, यह भूल जाते हैं।

हिन्दी में उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है–कुछ तो स्वयं अपनी भाषा का समुचित ज्ञान न होने के कारण और कुछ अन्य भाषाओं में भी अपना ज्ञान दिखाने की प्रवृति के कारण। कभी–कभी हिन्दी में उर्दू के शब्द, भाषा में मिलाने का प्रयास करते हैं। अंग्रेजी के शब्द मिलाकर लोग यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि वे काफ़ी पढ़े–लिखे हैं। एक–दूसरे की देखा–देखी व्यवहार में खिचड़ी भाषा का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

कुछ लोगों का तर्क यह भी है कि अपनी शब्दावली में अंग्रेजी अथवा अन्य भाषाओं के शब्द मिलाने से हिन्दी अधिक समर्थ बनती है। उदाहरण के लिए, कहा जाता है कि अंग्रेजी डिक्शनरी में अनेक यूरोपीय भाषाओं के शब्द हैं, अनेक हिन्दी के शब्द भी हैं। यह तर्क देने वाले कभी यह देखने अथवा समझने का प्रयास नहीं करते कि अंग्रेजी की डिक्शनरी में कौन से हिन्दी शब्द सम्मिलित किए गए हैं–और क्यों किए गए हैं? इस दिशा में थोड़ा–सा भी प्रयास किया जाए तो समझ में आ जाएगा कि अंग्रेजी शब्दकोश में हिन्दी के केवल वे ही शब्द लिए हैं जो उनकी भाषा अथवा संस्कृति में नहीं हैं–जैसे, धर्म, धोती, चपाती आदि। अंग्रेजी शब्दकोश में कहीं भी आपको माता, पिता, मंदिर, पुस्तक, शरीर, हृदय, नाक, कान, हाथ, गेंहूँ, कपास, आलू, लोहा जैसे हजारों शब्द नहीं मिलेंगे जिनके लिए अंग्रेजी में पहले से ही कोई शब्द हैं। अंग्रेजी में, भारत के ही नहीं, अन्य देशों के शब्द भी समाहित करने की आवश्यकता अंग्रेजों को इस कारण भी पड़ी कि उनका साम्राज्य संसार के अनेक देशों में फैला था। लेकिन

हिन्दी के सामने न तो कोई ऐसी स्थिति थी और न कोई ऐसी विवशता। यहाँ की प्रजा तो अंग्रेजों के गोरे चमड़े और उनकी आर्थिक समृद्धि के आतंक में उनकी भाषा की नकल करने लगी। हिन्दी भाषायों को किसी भी रूप में कूपमंडूक बने रहने की आवश्यकता नहीं। जो शब्द हमारी भाषा में नहीं हैं, जो वर्तमान सभ्यता की देन हैं, जैसे राशन कार्ड, रेल, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मोटर कार, पेट्रोल, डीज़ल आदि का प्रयोग ज्यों का त्यों करने में कोई बुराई नहीं है। किन्तु डैडी, मम्मी, संडे–मंडे, स्टुडेंट, स्टोरी, पोइट्री आदि जिनके लिए हमारी भाषा में अनेक प्रचलित शब्द हैं, उनका प्रयोग अपने वाक्यों में अनावश्यक ही नहीं, हास्यप्रद भी लगता है।

यह उलझन किस विध सुलझाऊँ ?

यह उलझन किस विध सुलझाऊँ ?

सब जब पूछे पिता कौन है, कैसे नाम बताऊँ ?
नाम लिए बिना काम चले ना, नाम लेत सकचाऊँ।।

ज्योति रूप है नाम तुम्हारा, दरपन जो लख पाऊँ।
कारि स्वरूप देख अपने को, आंचल में छिप जाऊँ।।

विश्व चराचर के तुम स्वामी, तुम थाह न पाऊँ।
मैं अधिपति हूं पाप-पुंज का, कैसे जाल लगाऊँ।।

द्यावा पृथ्वी को तुम धारे, क्या तब पुत्र कहाऊँ।
मुझसे अपना आप न सम्भले, यही देख घबराऊँ।।

नाम लिये भी जग न माने, सौ विश्वास दिलाऊँ।
वेद-शास्त्र की देय दुहाई, मैं पीछा छुड़वाऊँ।।

– पण्डित बुद्धदेव वेदालंकार

भटकता क्यों फिरे नाहक,
तलाशे यार में दर – दर।
उसे क्या ढूंढ़ना बाहर,
भला बैठा हो जो घर पर।।

कभी काशी कभी काबा,
कभी मन्दिर कभी मस्जिद,
गुजारी उम्र यूं सारी,
मिला फिर भी नहीं दिलवर ।।१।।

वो तेरे दर पे बैठा ही, तुझे आवाज देता है,
सुनेगा तू भला क्योंकर, फिदा है तू तो गैरों पर
।।२।।

न इन आंखों से तू उसको,
कभी भी देख पाएगा,
कि जिन आंखों से तू है देखता,
दिन रात मालोजर ।।३।।

अरे! मौजूद है वो तो,
हर इक घर पर हर इक दर पर,
जो पाना चाहता उसको,
तो शौके दीद पैदा कर ।।४।।

तेरी दौलत तेरी नेमत,
की क्या दरकार है उसको,
जमाना भर ही खाता है,
कि जिसके पास से लेकर ।।५।।

जो पाना चाहता उसको,
तो "वेदप्रिय" बताता है,
बुला उसको तू बेकल हो,
दीवाना बन फिदा होकर ।।६।।

–✍ वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाडी (राज.)

हमारी पहचान

– ✍ वेद कुमार दीक्षित (देवास)

मैं कौन हूँ ? यह प्रबल जिज्ञासा जितनी गौतम बुद्ध या महर्षि दयानन्द आदि महामानवों को रही होगी उतनी ही उस व्यक्ति को भी होती होगी जिसे समाज में अपनी पहचान ढूंढने की चुनौती का बार–बार सामना करना पड़ता है।

यूँ तो जब बालक का जन्म होता है तो पिता उसके कान में कहता है – ***वेदोऽसि***, अर्थात् तू वेद है। यही मुख्य व असली पहचान है उस नवजात की। कालांतर में न जाने कितनी पहचानों से उसे गुजरना पड़ता है, कभी सम्बन्धों के, कभी ज्ञान के तो कभी कर्म और प्रतिष्ठा के आधार पर। समाज से प्राप्त पहचान के आधार पर ही वह जीवन जीने लगता है। उसे ही अपनी नियति समझता है। वस्तुतः ये सभी पहचानें अल्पकालिक होती हैं जो बदलती रहती हैं। वर्ण भी ऐसी ही पहचान है।

किसी व्यक्ति के द्वारा अपने लिए उपयुक्त कर्म एवं आजीविका का चयन करना वर्ण चयन कहलाता है। यह उसके ज्ञान, रुचि एवं स्वभाव पर निर्भर करता है कि वह कौन सा वर्ण चुने। पूर्व में वर्ण प्रदान करने का कार्य बालक का गुरु अथवा आचार्य ही करता था क्योंकि वह 15–20 वर्षों तक उसके साथ गुरुकुल में रहता था। अतः उसके आचार–विचारों से भली–भांति परिचित होता था। यदि आज भी यह व्यवस्था पुनः लागू कर दी जाए तो समाज की दशा सुधर सकती है। यह उत्तरदायित्व सरकार को सभी शिक्षा केंद्रों को सौंप देना चाहिए।

भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को कुछ अधिकार प्रदान किए हैं, उनमें से कुछ अधिकार जैसे अपना मनोवांछित व्यवसाय पाने या करने का अधिकार और अपना जीवनसाथी चुनने का अधिकार भी है। इसी तरह विवाह संस्कार में लिखा है ***ओम् समंजन्तु विश्वेदेवा0*** अर्थात् विवाह में पधारे सभी श्रेष्ठ जन जानलें कि हम दोनों वर–वधू स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे के साथ जीवन बिताना चाहते हैं। यहां अनुमति न मांग कर आशीर्वाद मांगा गया है एवं सूचित किया गया है । हमने यह उदाहरण सिर्फ यह बताने के लिए दिया है कि वर–वधू दोनों पूर्ण वयस्क हैं, परिपक्व हैं और वे अपने निर्णय स्वयं ले सकते हैं। प्रश्न यह है कि जब इतने अधिकार प्राप्त हैं फिर वर्ण चयन का अधिकार क्यों नहीं ?

अधिकारों को हमेशा कर्तव्यों के अधीन रखा जाता है। अधीन होने भी चाहिए। पूर्वकालिक वर्ण व्यवस्था हमें ऐसे अधिकार देती थी जो कर्त्तव्य पालन से बन्धे थे। जो भी कर्तव्य से भागता था उसका अधिकार छिन जाता था। यही शूद्रत्व को प्राप्त होना था – ***(ब्राह्मणो याति शूद्रताम्।)***।

वर्ण की श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए उसी के अनुरूप कार्य करने आवश्यक हैं। मजा तब है जब आप जीवन–भर उसी वर्ण पर टिके रहें जो आपने चुना था। इसी में मनुष्यत्व की सार्थकता है। जन्म लेने के तरीके न जाने कितने प्राणियों के मनुष्य के समान हैं किन्तु इतने मात्र से न वे मनुष्य बन जाएंगे और न मनुष्य उन जैसा। हम कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार आचार–विचार तथा आहार–विहार बदला जा सकता है, उसी प्रकार वर्ण भी बदला जा सकता है, किंतु जाति नहीं। परंतु कोई जीवन में बार'– बार अपना वर्ण न बदले, इसकी व्यवस्था देखना भी वर्ण–व्यवस्था में सम्मिलित है। यदि एक बार स्वीकृत वर्ण कोई बदलता है तो यह उसके पतन का सूचक है। कारण यह है कि पतन में स्वाभाविकता होती है, जबकि उच्चता या श्रेष्ठता के लिए प्रयास करना पड़ता है, योग्य बनना पड़ता है। निश्चय ही संकल्प बदलने वाला व्यक्ति शूद्रत्व की ओर जाएगा। यहां यह बता दें कि समाज की वर्तमान दुर्गति के लिए वर्ण व्यवस्था एवं उसके निर्माताओं को दोष देने वाले यह भूल जाते हैं कि जन्मगत–श्रेष्ठता का कोई मूल्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो जगन्नाथ ब्राह्मण होकर भी महर्षि को विष देने का जघन्य पाप नहीं करता। मनुष्य– जन्म ईश्वराधीन है परन्तु वर्ण– ग्रहण मनुष्य के हाथ में है।

वर्णों के उच्च या निम्न होने में ज्ञान की बहुत बड़ी भूमिका होती है। ब्राह्मणत्व पाना उस मधुर फल को पाने के समान है जो वृक्ष की सर्वोच्च टहनी पर लगा हुआ है। हम प्रधानतः है जैसा कर्म करते हैं, तदाकार हो जाते हैं। यह तन्मयता ही हमारी पहचान बन जाती है। हमारा मानना है कि वर्ण के अनुसार ही मनुष्य की सद्गति या दुर्गति होती है, चाहे लोक हो या परलोक।

वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था कहना गलत होगा। क्योंकि जाति में होने या बने रहने के लिए किसी बाहरी व्यवस्था की जरूरत ही नहीं है। जाति से हम मनुष्य को मनुष्य या देवता नहीं बना सकते। जाति से आत्मा शुद्ध और उच्च नहीं हो सकती। जबकि वर्ण से हम उसमें संस्कारों का आधान कर सकते हैं। वर्तमान में वर्ण और जाति को एक मान लेने से तथा दोनों को मिला देने से यह सब गड़बड़ हुई है। प्रायः लोग समाज से डरते हैं कि समाज क्या कहेगा ? हमें अपने से अलग कर देगा। मगर समाज भी तो हमने ही बनाया है। ऐसे विकृत समाज में जीकर भी क्या कर लेंगे। जैसे पहले समाज बनाया था, फिर बना लेंगे। बस थोड़ी –सी समझदारी और साहस की जरूरत है।

अतः जाति का व्यर्थ दम्भ भरना ठीक नहीं ,क्योंकि जाति कुत्ते की पूँछ के समान है, जो होती तो है किन्तु न तो मक्खी–मच्छर भगा सकती है और न गुह्यगोपन के ही काम आती है। जरा सोचिए, यदि हमने तथाकथित जाति में रहकर जीवन– भर कुछ नहीं किया और निरुद्देश्य मरकर चले गए तो क्या लाभ? इससे अच्छा अपनी रुचि व सामर्थ्यानुसार वर्ण चयन कर यदि उसका पालन करते हुए अपने जीवन को उन्नत करें और समाज के भी काम आएं तो यह प्रशस्यतर होगा। अस्तु, ***अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।***

चिंतन की अनुकूलता, से बनता विश्वास ।
घटनाक्रम वा परिस्थिति, इसके साक्षी खास।।
इसके साक्षी खास, मनन, सत्संग जरूरी ।
स्वाध्याय से ज्ञान, यज्ञ विधि होती पूरी ।।
कह 'अनंग' करजोरि, इसीसे होय शुद्ध मन ।
अंत:करण सुयोग्य, बनाता है शुभ चिन्तन ।।

— अनंग पाल सिंह 'अनंग'

मधुरम् मधुरम्, मम संस्कृतम्

मधुरम् मधुरम्, मम संस्कृतम्।
मम संस्कृतम्, तव संस्कृतम्।।

अयि वेदमयी अमृतवाणी,
अयि देवानां प्रिय कल्याणी।
तव ज्ञानसिक्त विमला किरणाः,
विश्वस्य हरन्त्यखिलं तमसम्।। मधुरम्०

त्वं जननी असि बहु भाषाणां,
स्वयमेव विधाता गायति त्वाम।
त्वं धर्म-कर्मयोः गीता असि,
प्रतिपल दर्शयसि सत्यपथम्।। मधुरम्०

भाषेयं शाश्वत सत्यभृता,
अति पावन वै प्राचीनतमा।
प्रत्यक्षर शंकर अभयंकर,
अस्यामस्ति शक्तिरतुलम् ।। मधुरम् ०

अव्यक्ताः सद्भावाः व्यक्ताः,
संग्रथिताः सर्वे सद्ग्रन्थाः।
जनगणमन भाषा स्यादेषा,
वद वन्दे संस्कृत मातरम्।। मधुरम् ०

निवसत्यस्यां भारत संस्कृति,
अस्यामस्ति लयतालयतिः।
ममता सह समरसताप्यस्ति,
गुञ्जत्यस्यां शिवसंगीतम्।। मधुरम् ०

अस्याः भणनं रणनं स्मरणम,
मनसि प्रचलति मम अहर्निशम्।
प्रज्ञापटमुद्घाटयति इयम्,
सर्वस्य करोति कल्याणम्।। मधुरम् ०

— ✍वेद कुमार दीक्षित
(देवास)

कहानी

जिम्मेदार कौन ?

– ✍ मालती मिश्रा 'मयंती' (दिल्ली)

पाँचवें पीरियड की समाप्ति की घंटी बजी, घंटी की आवाज सुनते ही विद्यार्धी अध्यापिकाओं की उपस्थिति भूलकर आपस में जोर–जोर से बातें करने लगे और पुस्तक बंद कर दिया। सभी अध्यापिकाएँ भी अपनी–अपनी फाइल, पुस्तक आदि उठाकर दूसरी कक्षाओं में जाने के लिए निकल गईं। छठा पीरियड शुरू हो चुका था, यह आखिरी पीरियड था। सुबह से पढ़ते–पढ़ते बच्चे अब तक मानसिक रूप से थक चुके थे ऐसे में यह अंतिम पीरियड भी पढ़ना उन्हें बहुत नागवार गुजरता है परंतु पढ़ना तो पड़ेगा। शिक्षक वर्ग के लिए भी यह कहाँ आसान होता है सुबह से एक कक्षा से दूसरी कक्षा दूसरी से तीसरी भाग रहे हैं और हर कक्षा में जाकर चालीस से पचास विद्यार्धी को पहले तो चुप कराना और फिर उनको पढ़ाना। सुबह आठ बजे से दोपहर डेढ़–दो बजे तक लगातार पूरे दबाव के साथ इतना तेज बोलते रहना कि कक्षा के आखिरी छोर तक के विद्यार्धी को साफ–साफ सुनाई दे, यह भी कहाँ आसान था, परंतु शिक्षक की नौकरी और नौकरी की जिम्मेदारी है तो किसी अन्य से तो क्या स्वयं से भी शिकायत नहीं कर सकते।

संगीत और नृत्य के अध्यापक अमरेंद्र सेन ने घंटी की आवाज सुनते ही नृत्य का अभ्यास कर रहे बच्चों को उनकी कक्षाओं में जाने का आदेश दिया। उनका यह पीरियड कक्षा सातवीं –ई में था, उन्हें पता था कि कक्षा में बच्चों ने आसमान सिर पर उठा रखा होगा। बच्चे तो बच्चे हैं पसंदीद विषय न होने पर अध्यापक की अनुमति बिना ही किताबें बंद हो जाती हैं किंतु नृत्य या संगीत जैसा विषय हो तो अध्यापक के कहने के बाद भी नहीं छोड़ना चाहते।

अमरेंद्र सेन बच्चों को वहाँ से भेजकर संगीतकक्ष को बंद करके लंबे–लंबे डग भरते हुए कक्षा में आए तो कक्षा की हालत देखकर दंग रह गए। कुछ बच्चे श्यामपट के पास खड़े थे तो कुछ बच्चे स्मार्ट बोर्ड के पास एक दूसरे को धकेल रहे थे। कक्षा के लगभच सभी बच्चे खड़े थे। दो–चार बच्चे बेंचों के ऊपर से भाग रहे थे। कक्षा के प्रवेश द्वार के पास रखे हुए डायस के पास ही तीन–चार बच्चे खड़े थे। मास्टर अमरेंद्र कक्षा में पहुँचते ही वहाँ का दृश्य देख आपे से बाहर हो गए और आव देखा न ताव वहाँ खड़े एक बच्चे को एक थप्पड़ रसीद कर दिया। यह देखते ही सभी बच्चे भाग कर अपनी–अपनी सीट पर बैठ गए। वैसे संगीत और नृत्य के अकेले अध्यापक होने के नाते और उनके विनम्र व मजाकिया स्वभाव के कारण सभी बच्चे उनका सम्मान करते और उनकी बात मानते थे लेकिन इस समय उनसे एक चूक हो गई बच्चों की भीड़ और उस बच्चे के ब्वॉय कट बालों की वजह से वह जान नहीं पाए कि उन्होंने जिस बच्चे को थप्पड़ मारा वह लड़की है। वैसे तो 'बेटा–बेटी एक समान' का नारा बहुत अच्छा लगता है किन्तु जहाँ समानता में कठिनाई या नुकसान और असमानता में सहजता या लाभ नजर आए वहाँ असमान रहना ही उचित माना जाता है, चाहे वह बसों और रेलगाड़ियों में सीटों के आरक्षण की बात हो या शारीरिक परिश्रम से राहत की बात हो या फिर पढ़ाई या नौकरी में महिलाओं के लिए आरक्षण आदि की बात हो, वहाँ महिलाओं को बराबरी नहीं चाहिए। ऐसा ही एक क्षेत्र है कक्षा, कक्षा में सभी विद्यार्थी समान है परंतु लड़कियों को उस तरह से नहीं डाँट सकते जैसे लड़कों को। खैर! उन्होंने एक लड़की को थप्पड़ मारा है, इस बात से बेखबर मास्टर जी ने डाँट–डपट कर बच्चों को बैठाया और फिर उन्हें अनुशासन में रहने की सीख देने लगे। आखिरी पीरियड होने के बाद भी बच्चे शांति से उनकी बातें सुन रहे थे क्योंकि वे उन्हें नाराज करके संगीत व नृत्य में अपने चुने जाने के अवसर को नहीं खोना चाहते थे। छुट्टी की घंटी बज गई, मास्टर साहब को सीढ़ियों के पास ड्यूटी देने जाना था इसलिए उन्होंने पहले इसी कक्षा के बच्चों की लाइन बनवाई और उन्हें भेजकर स्वयं ड्यूटी देने चले गए।

दोपहर के दो बजकर बीस मिनट हो रहे थे, सभी अध्यापिकाएँ जल्दी–जल्दी अपना कार्य खतम करने में

व्यस्त थीं ताकि ढाई बजे घर के लिए निकल सकें। मास्टर अमरेंद्र सेन को ऑफिस में बुलाया गया। वह प्रधानाचार्या के ऑफिस में पहुँचे, प्रवेशद्वार पर पहुँचते ही उन्होंने उनकी ओर पीठ करके बैठे दो पुलिस वालों को देखा पर वह कारण से अनभिज्ञ थे। अनुमति लेकर वह ऑफिस के भीतर आए।

प्रधानाचार्या ने जलते हुए नेत्रों से उनकी ओर इस प्रकार देखा मानों आँखों ही आँखों से उन्हें वहीं खड़े–खड़े भस्म कर देंगीं, पर बोलीं कुछ नहीं।

वहाँ उपस्थित मैनेजर मि० सोमानी ने बताया कि आज छठे पीरियड में मास्टर जी ने जिस लड़की को थप्पड़ मारा था उसके पिता ने उनके खिलाफ एफ.आई. आर. करवाया है कि उन्होंने उनकी बेटी को इतनी जोर से मारा कि उसका गाल सूज गया है, इसीलिए पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के लिए आई है। और इतना ही नहीं उसके पिता ने लड़की के सूजे हुए गाल की फोटो खींचकर स्कूल की वेबसाइट पर तथा सोशल मीडिया पर भी डाल दिया है ताकि अन्य अभिभावकों का और जनता का समर्थन पा सके।

मास्टर जी के तो पैरों तले धरती ही खिसक गई, उन्होंने प्रधानाचार्या तथा लड़की के पिता को अपनी स्थिति स्पष्ट करने कोशिश की, उन्हें कितना समझाया कि कक्षा का दृश्य उस समय बेहद डरावना था, बच्चों को रोकने के लिए उन्हें हाथ उठाना पड़ा और उस समय लड़की के छोटे बालों और लड़कों जैसे कपड़ों की वजह से वह यह भी नहीं जान पाए थे कि वह लड़की है। इस तरह की न जाने कितनी दलीलें देकर मास्टर साहब ने उन्हें समझाने का प्रयास किया परंतु लड़की का पिता अपनी जिद पर अड़ा रहा और उन्हें गिरफ्तार करवाकर ही माना।

विद्यालय के मालिक कोई छोटी हस्ती नहीं थे, उनका विद्यालय नामचीन विद्यालयों में से एक है और इसकी चार अन्य शाखाएँ भी हैं। राजनीति से भी अछूते नहीं हैं, नेताओं के बीच उठना–बैठना उनकी पहुँच को बढ़ा देता है। वह जानते थे कि यदि मास्टर जी को सजा हुई तो विद्यालय का नाम भी खराब होगा, अतः उन्होंने लड़की के पिता वर्मा जी को समझाने का प्रयास किया। लड़की ने भी अपने पिता को पुलिस केस करने से मना किया तथा पत्नी ने भी समझाया कि उन्हें मास्टर जी की स्थिति को समझना चाहिए, वो गुरु हैं अगर बच्चे को थोड़ी सजा दे भी दी तो उसकी भलाई के लिए ही किया होगा, उन्हें केस वापस ले लेना चाहिए। परन्तु मि० वर्मा ने अपनी पत्नी को डाँटकर चुप करवा दिया।

विद्यालय की दो–तीन और अध्यापिकाओं के पति पुलिस विभाग में ही उच्च पदों पर कार्यरत हैं, विद्यालय के संस्थापक के कहने से उनके द्वारा भी सोर्स लगाए गए और इंस्पेक्टर और सब–इंस्पेक्टर ने भी वर्मा जी को समझाने का प्रयास किया पर मजाल है जो महाशय टस से मस हो जाते।

शाम के पाँच बज चुके थे, एस. एच. ओ. ने थाने में प्रवेश किया, एक कोने में कुर्सी पर बैठे मास्टर जी की आँखों में उम्मीद की किरणें फिर जगमगा उठीं। उसने मास्टर जी को अपने पास बुलाया और उन्हें ढाढस बँधाया कि वह चिंता न करें वह लड़की के पिता को समझाएँगे और उसे समझना ही होगा, आखिर गुरु हैं आप! ऐसे कैसे एक थप्पड़ मार देने की वजह से आपका नाम और करियर खराब होने देंगे! आप फिक्र न करें आराम से बैठिए। मास्टर जी को एस.एच.ओ. की बातों से बड़ी तसल्ली मिली कुछ हद तक वह आशान्वित होकर चिंता को स्वयं के मस्तिष्क से दूर झटककर बैठ गए परन्तु छठी इन्द्रिय अभी भी अशुभ संकेत ही दे रही थी।

मास्टर जी को थाने में बैठे हुए लगभग छः घंटे हो चुके थे, रात्रि के आठ बज चुके थे। दिमाग ने काम करना बन्द कर दिया था। हत्या का आरोपी भी उतना बड़ा अपराधी घोषित नहीं होता होगा जितने बड़े अपराधी मास्टर जी बना दिए गए थे या फिर ऐसा भी हो सकता है कि शरीफों की शराफत को जब बेपर्दा किया जाता है तो वह बेहद अपमानित महसूस करते हैं किन्तु जो पहले से बेपरदा हो उसे क्या फर्क पड़ेगा? यही अंतर इस समय मास्टर जी और पेशेवर अपराधी में था। थाने में बैठे हुए वह हर आने–जाने वाले को उम्मीदभरी नजरों से देखते और थोड़ी ही देर में वही नजरें बेउम्मीद होकर वापस लौट आतीं।

थाने में विद्यालय के मैनेजर मि० सोमानी ने प्रवेश किया तथा एस.एच.ओ. से हाथ मिलाकर मेज के सामने कुर्सी पर बैठ गए। तभी लड़की के पिता मि० वर्मा भी आ पहुँचे। वह भी बैठे और सभी की आपस में बातें होने लगीं। मास्टर जी को भी बुलाया गया, उनकी आँखों में आशा की चमक दिखाई दी। मास्टर जी ने

मि० वर्मा से केस वापस लेने का अनुरोध किया पर वह नहीं माने तब एस. एच. ओ. ने उन्हें बहुत समझाया कि यह आपकी बेटी के गुरु हैं, गलती होने पर सजा देने का अधिकार भी रखते हैं फिरभी यदि वह चाहें तो उन्हें मास्टर जी से माफीनामा भी लिखवाकर दे देते हैं पर उन्हें केस वापस ले लेना चाहिए। इतना सुनकर तो मि० वर्मा भड़क गए और मीडिया बुलाने की धमकी देते हुए बोले कि वह मीडिया को बताएँगे कि थाने में एस. एच.ओ व अन्य सभी उन्हें धमका कर केस वापस लेने की बात कर रहे हैं। सभी चुप हो गए किसी ने इस विषय में आगे कुछ भी न बोलना ही उचित समझा। मि० वर्मा के जाने के बाद एस.एच.ओ. ने मि० सोमानी से कहा कि यह व्यक्ति लालची है, जब तक उसे पैसे नहीं मिलेंगे वह ऐसे ही अड़ा रहेगा, उसे पता है कि आप के स्कूल का नाम और मास्टर जी का करियर दाँव पर है और आप अपने स्कूल का नाम नहीं खराब होने देंगे।

यह बात मास्टर जी के कानों में पड़ते ही उन्हें ऐसा लगा मानों वह गश खाकर गिर पड़ेंगे। उन्हें पता है स्कूल तो अपनी छवि पर दाग नहीं आने देगा, पैसे देकर भी वेबसाइट से फोटो हटवा देगा लेकिन उनके पास तो इतने पैसे नहीं हैं, वह क्या करेंगे... कैसे निकलें इन सब से बाहर...

अब उन्हें अपना करियर खत्म होता नजर आ रहा था, उनके नाम पर अब ऐसा धब्बा लगेगा कि उन्हें कोई भी विद्यालय नौकरी नहीं देगा। इंसान अपनी बेइज्जती बर्दाश्त भी कर ले, अभावों में भी जीने का प्रयास कर ले परंतु अपने परिवार का क्या करे? कैसे नजर मिलाएँगे अपने बच्चों से...पत्नी को क्या जवाब देंगे? क्यों नहीं सतर्क थे वो... आखिर न उठाते हाथ, तो क्या हो जाता.... पर अब क्या करें... अब तो वह मान नहीं रहा....सभी समझाकर हार मान चुके हैं....अब मेरे बच्चों का तो भविष्य खराब हो जाएगा...ऐसे ही न जाने कितने भाव मास्टर जी के मन में आ–जा रहे थे। उनके भीतर द्वंद्व चल रहा था, वह कभी बैठ जाते कभी खड़े होकर टहलने लगते, न जाने कैसे–कैसे सवाल उठेंगे लोगों के मन में उनके लिए.... अगर अब वह यहाँ से बाहर आ भी गए तो क्या कोई उनका सम्मान करेगा...क्या अब वह पहले की भाँति बच्चों के वही प्यारे संगीत अध्यापक बने रह पाएँगे....क्या किसी बच्चे की गलती पर वो उसे डाँट सकेंगे...सभी हिकारत की नजरों से देखेंगे उन्हें...ऐसे सम्मान हीन जीवन का वह क्या करेंगे? जिन्दगी भले छोटी हो पर सिर उठाकर चलने योग्य हो, हिकारत भरी जिंदगी होने से न होनी भली है।

मास्टर जी के घर के बाहर लोगों की भीड़ लगी हुई थी, लोगों को जैसे–जैसे खबर मिलती जा रही थी वे आते जा रहे थे। भीतर हॉल में परिजनों का क्रंदन वातावरण को बेहद मार्मिक बना रहा था। आज सभी की जबान पर मास्टर जी की विनम्रता की कहानी थी। मि० सोमानी एक ओर चुपचाप सिर झुकाए गमगीन मुद्रा में बैठे थे कुछ अध्यापिकाएँ भी बैठी हुई थीं, सभी की आँखें बरस रही थीं।

''बहुत अच्छे इंसान थे लेकिन ये मास्टरी की नौकरी ने उनकी जान ली।'' किसी की आवाज आई।

''शर्मिंदगी ने मास्टर जी की जान ले ली, बहुत स्वाभिमानी थे, बेचारे अकारण ही गिरफ्तार किए जाने का अपमान बर्दाश्त न कर सके।'' मिसेज शर्मा अपने आँसू पोछती हुई बोलीं।

''ये आत्महत्या नहीं इसे हत्या कहेंगे, एक मास्टर को जान देने पर मजबूर किया गया है। जो भी जिम्मेदार है हम उसे छोड़ेगे नहीं, चाहे हमें अब कुछ भी करना पड़े।'' अत्यंत दुख और क्रोध से चड्ढा जी का पूरा शरीर काँप रहा था।

''किसे नहीं छोड़ेंगे चड्ढा जी, किसको मास्टर जी की मौत का जिम्मेदार ठहराएँगे? लड़की के लालची बाप को! पुलिस वालों को या विद्यालय वालों को?'' मि० मल्होत्रा ने गमगीन मुद्रा में कहा।

''एक थप्पड़ ही तो मारा था, क्या उस निर्दयी इंसान ने कभी नहीं मारा होगा अपनी बेटी को? गुरु का एक थप्पड़ नही बर्दाश्त हुआ उससे!'' पड़ोस में रहने वाली मिसेज देसाई बोलीं।

''उस एक इंसान की वजह से एक परिवार उजड़ गया अब किसी पर इल्जाम लगाने से तो गया हुआ इंसान वापस आने से रहा।'' मृत शरीर के पास ही बैठीं मिसेज मल्होत्रा बोलीं।

स्कूल वालों ने भी अति कर रखी थी, बारह–पंद्रह सौ बच्चों में संगीत और नृत्य के एक ही अध्यापक थे मास्टर जी। कैसे संभालते होंगे, ये बेचारे इन्हीं का दिल जानता होगा, इतने बच्चों में हमेशा कभी जिला–स्तर

पर कभी राज्य स्तर पर प्रतियोगिताओं की तैयारी अकेले करवाते थे और स्कूल को जितवाते भी थे।'' वहाँ बैठे एक महाशय बोले जो शायद मास्टर जी के किसी विद्यार्धी के पिता थे।

''ऐसे में तो अच्छा–भला इंसान पागल हो जाए, मास्टर जी को जरा सा गुस्सा आ गया तो क्या गलत हो गया!'' दूसरी महिला बोली।

''उस लड़की के मुए बाप ने एक थप्पड़ के लिए इन्हें हवालात भिजवा दिया, उसकी वजह से तो इनकी जान ही चली गई, अब उसको छोड़ना नहीं चाहिए।'' वहीं खड़े पड़ोसी मि० देसाई बोले।

''वो तो ठीक है भाई पर स्कूल वालों को भी क्यों भूल रहे हो! चार–पाँच अध्यापक का काम अकेले मास्टर जी से करवा रहे थे, शोषण कर रहे थे शोषण, नहीं तो अगर कोई और अध्यापक मास्टर जी की मदद को होता तो न उन्हें गुस्सा आता और न हाथ उठाते, तो ये सब कुछ नहीं होता।'' मि० मल्होत्रा ने कहा।

''अरे भाई साहब! पुलिस वालों की क्या कम गलती है, ऐसे कैसे उनकी हिरासत में एक आदमी ने फाँसी लगा लिया और उन्हें पता ही नहीं चला! केस तो उनके खिलाफ भी बनता है, जिम्मेदार तो वो भी बराबर हैं।'' मि० शर्मा बोले।

''अब तो जो होना था हो गया अब किसी को भी जिम्मेदार ठहराने से मास्टर जी तो वापस आने से रहे। अब अंतिम यात्रा की तैयारी करिए।'' एक बुजुर्ग जो मास्टर जी के दूर के रिश्तेदार थे, उन्होंने कहा।

''ऐसे कैसे जो होना था हो गया! क्या यही होना था कि एक मास्टर को बिना बात शर्मिंदगी के कारण आत्महत्या करनी पड़े? ये तो नहीं होना चाहिए था, ये कहिए जो नहीं होना था, वह हो गया। दो छोटे–छोटे बच्चे अनाथ हो गए, पत्नी असमय ही विधवा हो गई, ये नहीं होना था। ये सब एक सनकी इंसान की सनक के कारण हुआ है, उसे इसकी सजा मिलनी चाहिए।'' मि० शर्मा के बीस वर्षीय बेटे ने जो अभी–अभी आया था, कहा।

''अब किस–किस को दोष दें हम, क्या सरकार की गलती नहीं है जिसने ऐसा कानून बनाया कि अपना खून–पसीना जलाकर पढ़ाने वाला अध्यापक बच्चे को कुछ कह ही नहीं सकता! मेरे पति को चिता तक पहुँचाने में सभी ने अपने हिस्से का लकड़ी जोड़ी है, भगवान किसी को माफ नहीं करेगा।'' मास्टर जी की पत्नी बिलखती हुई बोलीं।

''सबको अपनी गलती सुधारनी होगी चाहे वो लड़की का पिता हो या सिस्टम। जब तक मास्टर जी को न्याय नहीं मिलता तब तक उनका अंतिम संस्कार नहीं करेंगे। हमे मास्टर जी को न्याय दिलाना ही होगा।'' मि० चड्ढा बोले।

''मास्टर जी आपने बड़े ही कष्ट में अपने प्राण त्यागे हैं पर अब आपको हम न्याय दिलवाकर ही रहेंगे। चलिए भाइयों मास्टर जी के पार्थिव शरीर को लेकर चलते हैं पहले हम न्याय की माँग करेंगे तत्पश्चात ही अंतिम संस्कार करेंगे।'' मि० शर्मा का बेटा मास्टर जी के मुँह को कपड़े से ढकते हुए बोला।

''चलिए मास्टर जी उठिए अब आप आरोप मुक्त हो चुके हैं।'' हवलदार ने मास्टर जी के चेहरे से उनका ही हाथ हटाते हुए कहा।

मास्टर जी अचकचा कर उठ बैठे, ''य्ये क्या मैं जीवित हूँ!'' वो स्वयं से बड़बड़ाए। पर हवलदार ने सुन लिया।

''जीवित क्यों नहीं होंगे, अरे मास्टर जी कोई बुरा सपना देखा क्या?'' उसने कहा।

''ह् हहाँ कहते हुए मास्टर जी ने खड़े होकर अपने कपड़े झाड़कर दुरुस्त करते हुए इधर–उधर देखा तो खुद को हवालात में ही पाया और सामने उनकी पत्नी और मि० सोमानी खड़े थे जो उन्हें लेने आए थे। मि० सोमानी ने बताया कि पचास हजार रुपए लेकर मि० वर्मा ने केस वापस ले लिया। यह सुबह मास्टर जी के लिए नया जीवन बनकर आया था।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।